International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 2, March-April, 2026

संत ब्रह्मानंद सरस्वती की वाणी में लोकमंगल की अवधारणा

निशा कुमारी[1], डॉ॰ पूरनचंद टंडन[2]

[1]शोधार्थी, विषय – हिन्दी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)
[2]शोध निर्देशक – विषय – हिन्दी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

लोकमंगल की अवधारणा :–

लोकमंगल शब्द 'लोक' और 'मंगल' से मिलकर बना है। 'लोक' का आशय समस्त जनसमुदाय से है, जबकि 'मंगल' का अर्थ कल्याण, सुख, शांति और समृद्धि से है। इस तरह लोकमंगल का तात्पर्य संपूर्ण समाज के सर्वांगीण कल्याण से है। भारतीय चिंतन में यह धारणा अत्यंत प्राचीन है। वेदों, उपनिषदों, भगवद् गीता तथा संत साहित्य में बार–बार समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना व्यक्त की गई है। भारतीय साहित्य का मूल उद्देश्य भी लोकहित ही माना गया है। तुलसीदास ने 'परहित' को सर्वोच्च धर्म बताया, कबीर ने मानवता को धर्म का आधार माना, गुरू नानक ने समानता और सेवा का संदेश दिया तथा अन्य संतो ने लोककल्याण को साधना का अभिन्न अंग स्वीकार किया है। इसी पंरपरा में संत ब्रह्मनंद सरस्वती की वाणी भी व्यक्ति व समाज दोनों के समन्वित विकास की प्ररेणा प्रदान की है। लोकमंगल की अवधारणा केवल भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं है। इसमें नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के कल्याण का समावेरा है। जब व्यक्ति सत्य, अहिंसा, दया, सेवा, प्रेम, करूणा तथा सदाचार जैसे मूल्यों को अपनाता है, तभी समाज में वास्तविक लोकमंगल की स्थापना संभव होती है। संत ब्रह्मानंद सरस्वती की वाणी इसी व्यापक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है। उनके विचारों में लोकमंगल का आधार आत्मशुद्धि, लोक सेवा और ईश्वर के प्रति समर्पण है। यही कारण है कि उनकी वाणी व्यक्तिगत साधना को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है और मानव जीवन को अधिक सार्थक बनाने का मार्ग प्रस्तुत करती है। वे मनुष्य को आत्मबोध के साथ लोकसेवा, सदाचार, सदाचार संयम, करुणा व परस्पर सहयोग का संदेत देते हैं। उनके विचारों का लक्ष्य व्यक्ति के आतंरिक परिष्कार के माध्यम से समाज में नैतिक व सांस्कृतिक चेतना का विकास करना है।

संत ब्रह्मानंद सरस्वती की वाणी में आध्यात्मिक एवं नैतिक लोकमंगल :–

भारतीय संत परंपरा में लोक–मंगल का आधार व्यक्ति का आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास माना गया है। संत ब्रह्मानंद सरस्वती भी इसी परम्परा के समर्थ हैं। उनकी वाणी में आध्यात्मिक साधना केवल आत्ममोक्ष का साधन नहीं है, बल्कि लोक कल्याण का माध्यम भी है। उनका मत है कि जब मनुष्य सत्य संयम, सदाचार, आत्मानुशासन तथा ईश्वर भक्ति को अपने जीवन में अपनाता है, तभी वह समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनता है। इस प्रकार व्यक्ति का आत्मिक उत्थान ही सामाजिक कल्याण का आधार बन जाता है।

संत ब्रह्मानंद सरस्वती ने अपनी रचनाओं, विशेषकर 'ब्रह्मा–विचारी' और 'नीति–विचार' में मनुष्य को लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध तथा स्वार्थ से दूर रहने का उपदेश दिया है। ब्रहनानंद जी उपदेश देते हुए कहते हैं – "झूठ कपट घुल चोरी जारी।

"इन पांचों से बचो नर–नारी"[1]

ब्रह्मानंद जी का मझना है कि मनुष्य का वास्तविक धर्म ब्राह्म आडंबरों में नहीं बल्कि उसके सदाचरण व सेवा–भाव में निहित है। उनकी दृष्टि में धर्म का उद्देश्य व्यक्ति के भीतर सत्य करुणा, दया, प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों का विकास करना है। यही मूल्य आगे चलकर लोकमंगल की स्थापना में सहायक होते है। उनकी वाणी यह संदेश देती है कि यदि व्यक्ति स्वयं का चरित्र निर्माण कर ले, तो परिवार, समाज व राष्ट्र स्वतः सुदृढ़ बन सकते हैं। इस

प्रकार उनकी आध्यात्मिक चेतना व्यक्ति और समाज के बीच एक सेतु का कार्य करती है। इसलिए संत ब्रह्मानंद की वाणी में लोकमंगल का प्रथम आधार व्यक्तित्व का नैतिक एवं आध्यात्मिक परिष्कार है।

संत बहनानंद सरस्वती की वाणी में सामाजिक एवं मानवीय लोकमंगल :–

संत ब्रह्मानंद की वाणी का दूसरा आयाम सामाजिक एवं मानवीय लोकमंगल है। उन्होंने समान में प्रेम, समानता, सेवा, सहयोगी व विश्व बंधुत की भावना को विकसित करने पर विशेष बल दिया। उनके विचारों में धर्म का वास्तविक स्वरूप मानवता की सेवा है। वे मानते हैं कि जो व्यक्ति केवल अपने हित की चिंता करता है, वह सच्चे धर्म का पालन नहीं कर सकता, सच्चा साधक नहीं है जो समस्त समाज के सुख–दुख को अपना समझे। स्वामी जी कहते है कि– "इच्छा लेकर कर्म करे, सब पापों का मूल।

निरिच्छित हो कर्म करे, पाप मिले सब धूला।" [2]

उनकी बाजी में जाति – पाँति, ऊँच–नीच अंध–विश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष विरोध मिलता है। वे मानव मात्र को ईश्वर की संतान मानते हुए परस्पर प्रेम और सहयोग का संदेश देते हैं। उनकी दृ ष्टि में लोकमंगल का अर्थ केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बाल्क ऐसा समाज है जहाँ न्याय, समानता व नैतिकता का वातावरण हो। संत ब्रह्ममानंद की 'गौ–रक्षा' जैसी रनाओं में भी लोकहित की व्यापक भावना दिखाई देती है।

ब्रह्मानंद जी के गौ–प्रेम पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ बाबूराम जी लिखते हैं कि "स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती ने भारत में गोवध निषेध आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया जनता में गौ की उपयोगिता के विषय में विस्तार से प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने 'गौ–रक्षा' पुस्तक लिखकर गौपालन के आन्दोलनों की गति प्रदान की।"[3] इस प्रकार स्वामी जी गो – संरक्षण केवल धार्मिक भावना का विषय नहीं, बल्कि कृषि, पर्यावरण, जीव–दया और भारतीय सांस्कृति मूल्यों की रक्षा से जुड़ा हुआ है।

संत ब्रह्ममानंद सरस्वती की वाणी में धार्मिक एवं सांस्कृतिक लोकमंगल :–

संत ब्रह्ममानंद जी की वानी में धर्म का स्वरूप संकीर्ण न होकर व्यापक एवं कल्याणकारी है। वे धर्म को केवल कर्मकांड या बाह्म आडंबर तक सीमित नहीं मानते, बल्कि उसे सत्य, करुणा, सेवा सदाचार और मानव हित से जोड़ते हैं। उनकी वाणी भारतीय संस्कृति के उन जीवन– मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है जो समाज में नैतिकता, अनुशासन व सद्भाव का विकास करते हैं। उनकी रचनाओं में वैदिक परम्परा, गुरु–भक्ति, यज्ञ, संस्कार और सांस्कृतिक मूल्यों का समन्वय मिलता है। ब्रह्मानंद सरस्वती जी समय–समय पर यज्ञों का आयोजन करते है जिससे बनता में यज्ञों के प्रति रुचि उत्पन्न हो। उनका मानना था कि यज्ञ से मानव का आचरण शुद्ध होता है। इन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग 200 महायज्ञों का विधिपूर्वक आयोजन करवाया। 'स्मामी ब्रह्मानंद जीवन–माला' में यज्ञ महिमा की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई हैः–

"देखण लोग भण्डारा आवें सबके मन में चा होरया ।
कहीं पै पण्डित होम करें थे सुणता ओ३म् स्वाहा होरया।"[4]

निष्कर्ष :–

इस प्रकार उनकी वाणी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के साथ–साथ लोकमंगल की भावना को भी सुदृढ़ करती है। इनकी सनाओं में सेवा, त्याग, परोपकार व मानव–कल्याण को जीवन की सर्वोच्च आदर्श माना है। इस दृष्टि से उनकी वाणी समाज में समरसता, नैतिकता व लोककल्याण की स्थापना का प्रभावी माध्यम बनती है। उनकी शिक्षाओं में आध्यात्मिक उन्नति, नैतिक जीवन, सांस्कृतिक सरंक्षण, जीव –दया जैसे जीवन मूल्यों का समन्वय मिलता हो वे व्यक्ति के आत्मिक विकास को समान के कल्याण से जोड़ते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि वास्तविक धर्म वही है जो समस्त प्राणिमात्र के हित में कार्य करे। वर्तमान समय की सामाजिक नैतिक व पर्यावरणीय चुनौतियों के संदर्भ में उनकी लोकमंगल की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2–6
2. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 326, पृ॰ 35.
3. डॉ॰ बाबूराम, संत ब्रह्मानंद सरस्वती ग्रंथावली, पृ॰ 28.
4. स्वामी ब्रह्मानंद जीवनमाला, पृ॰ 13